प्रशासन विचार का महत्त्व

अशोक दामोदर रानडे

(मूल प्रसिद्धी - संगीत कला विहार, संपा. बी. आर. देवधर, अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडळ, मिरज, सितंबर १९७७)

ये बड़े ही दुर्भाग्य की बात है की हमें इस बात का ज़रा भी अंदाज़ा नहीं है की संगीत शिक्षण पद्धति में कई समस्याएँ निर्माण हो गई है। संगीत शिक्षा के प्रशासन की समस्याएँ यही हमारे विचार का विषय बन जाता है। वेतन, सहुलियतें, पाठ्यक्रम और उपलब्धि आदि बातों की ओर केवल प्रशासन की दृष्टि से देखते रहना हमारे विचारों का दोष है। संपूर्णतया निर्दोष, न्याय्य और सर्वांगीण विचारों पर आधारित प्रशासन सिद्ध होने के पश्चात ही अगर हम शिक्षा संबद्ध बातों का विचार करने वाले हो तो वह बात उतनी ही हास्यास्पद बन जायेगी जितनी कि ईश्वर, अध्यात्म, नैतिकता आदि का विचार केवल वृद्धावस्था में ही करना। शिक्षा संबंधित विचार अविरत चलने वाली बात है। शिक्षा, कला शिक्षण, प्रयोगसिद्ध कलाओं की शिक्षा और संगीत की शिक्षा इस प्रकार के वृत्त हमारे सामने हमेशा रहने चाहिए जिनका परीघ घटता जाता हो। इस व्यापक संदर्भ में विचार न हो तो प्रशासकीय सुधार भी गले लगाने से परे जा नही सकता इस इषारे की ओर हमें ध्यान देना चाहिए।

व्यापक तत्त्वज्ञान का अभाव

हमारे संगीत शिक्षाविषयक विचार का कोई व्यापक संदर्भ न होने से हमारे पास संगीत शिक्षा का कोई तत्त्वज्ञान ही नहीं है जिससे संगीत शिक्षा के विविध उद्देश, उसके अनुसार परिवर्तनाभिमुख शिक्षाप्रणालियाँ, संगीत के प्रयोगसिद्ध स्वरूप के कारण अनिवार्य सिद्ध होने वाला शिक्षातंत्र का लचीलापन आदि बातों की ओर हमारा ध्यान ही नहीं है। रोग निवारण में संगीत का उपयोग करने वालो को संगीत के कौन से उद्देश्य हम संगीत शिक्षा के माध्यम से स्पष्ट करके दिखाते है ? श्रमपरिहार्थ संगीत का उपयोग कैसे और कहाँ किया जाता है क्या इस प्रश्न का उत्तर क्या हमें हमारी संगीत शिक्षण पद्धति से मिलता है ? आज भी रागों की संख्या को कम-ज़्यादा करने या तानों के अनेक प्रकार सिखाने से अभ्यासक्रम में बदलाव होता है ऐसी हमारी बचकानी समझ है। संगीत यानी शास्त्रीय संगीत, संगीत सीखने वाला यानी गाने-बजाने की क्षमता प्राप्त करने वाला, संगीत रसिक यानी संगीत के शिष्ट मान्य रूढ प्रकारों को समझने वाला इस प्रकार की बेतुके और सँकरे समीकरणों से अब भी हमारी संविद् सजी हुई है। समाज जीवन में सहभागी होने वाले वर्गों में परिवर्तन हो रहा है, इन सभी की सांगीतिक आवश्यकताएँ भिन्न भिन्न है। इन सारी आवश्यकताओं की क्षमता पर हमारे संगीत का अंतिम स्वरूप निर्भर करता है और इस प्रकार संगीत का स्वरूप निश्चित होते ही शिक्षा-प्रणालि और तंत्र आदि सारी संबंध बातों में परिवर्तन होगा इसका ध्यान रखना आवश्यक हैं। हमारे पास संगीत शिक्षा का तत्त्वज्ञान नहीं है। जो कुछ है वह है शास्त्रीय संगीत सिखाने का परंपरागत ज्ञान!

कलाकार शिक्षक की आवश्यकता

हमारे यहाँ संगीत शिक्षा के तत्वज्ञान की जड़ें मज़बूत न होने का कारण है, हमारे शिक्षक। संगीत के प्रयोगसिद्ध स्वरुप के कारण प्रत्यक्षतया न मँझे हुए कलाकारों द्वारा संगीत के तत्वज्ञान को बढ़ावा मिलना कठिन है। इसलिए इस उत्तरदायित्व को निभाने का भार उन्हीं व्यक्ति को मन लगाकर उठाने का प्रयत्न करना चाहिए जो संगीत के व्यवहार से प्रत्यक्ष में संबद्ध हो। कई संगीतकार प्रायः कम शिक्षित होते हैं। परंतु वास्तव में दुर्भाग्य की बात यह है कि शिक्षित होने पर भी इस अवस्था में कोई बदलाव आए ये बात निश्चित नहीं है। क्योंकि तथाकथित शिक्षित और अशिक्षित संगीतकारों का मूल दृष्टिकोण विचारों से वंचित रहने का है। किसी जमाने में

इतिहास में कलाकारों ने इस भूमिका का स्वीकार किया कि संगीत शास्त्र और कला एक दूसरे के विरोध में है। "वह तो पंडत है" वाला गालीनुमा प्रयुक्त मुहावरा इस बात का प्रमाण है कि कलाकार अपनी ज़िम्मेदारी को झटककर दूर गये हैं। भरत कलाकार था इसलिए युगप्रवर्तक शास्त्रकार था। शार्ङ्गदेव के बारे में भी यही सच होगा। शास्त्र मतलब सिर्फ शब्द पांडित्य नहीं होता। शास्त्र मतलब विचार प्रवणता, और विचार कभी चुप बैठने नहीं देते, वे हमेशा क्रियाशील बनाते है। तभी तो विचारों के कारण क्रिया में सुधार होता है। संगीत विषयक विचार संगीत क्रिया में भी सुधार कर देता है। कलाकारों के द्वारा कला के सम्बन्ध में विचार किये जाने पर संगीत शिक्षण के स्वरुप में जितना बदलाव आएगा उतना किसी अन्य चीज़ से होना संभव नहीं है। ताल पहले सिखाया जाए या लय, राग पहले सिखाया जाए या गीत, सामूहिक शिक्षा का उपयोग कहाँ तक और किस प्रकार होगा, ध्वनिमुद्रित संगीत का उपयोग कितना और किस प्रकार करना है इत्यादि कई समस्याओं का फलदायी विचार कलाकार कर सकता है। क्योंकि इन सारी समस्यों को सुलझाने की पूर्व शर्त है संगीत विषयक का मूल्यनिर्णय करना, और इसी निर्णय तक अधिक से अधिक बिना गलती किये पहुंचने की दृष्टि से कलाकार का अध्ययन हुआ होता है। आजकल शिक्षा के साधनों में उन्नति हुई है, पर उसके अनुसार प्रणालियों में बदल नहीं हो पाया है। कलाकार भी कभी साधक होता है, अतः साधकावस्था में किन किन बातों का उपयोग होता है ये बात उसे ज्ञात होना स्वाभाविक है। कला-शिक्षा प्रणालियों की रचना में सभी स्तरों पर कलाकार का सहभाग सर्वाधिक होना चाहिए, आज ये बात हम भूल चुके है। इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि उनके अनुभवों और सिद्धांतों का अनुवाद करना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक है उनके सिद्धांतों के मूल आशय को समझ लेना।

संगीत संविद् एवं श्रवण क्रिया की सहेतुकता

हमारे संगीत विषयक विचार को एक महत्त्वपूर्ण मोड मिलना आवश्यक है, जो लगता है कि, कलाकार के सक्रिय सहभाग के कारण सहज संभव है। हमारी शिक्षा का रूख संगीत संविद् को अधिक सूक्ष्म एवं चैतन्यशील करने की ओर होना चाहिए। हम विद्यापीठ में अथवा अन्यत्र क्या करते हैं ? एक तो वर्ष के परिणाम में प्राविण्य को नापते हैं अथवा पाठ्यक्रम के घटकों की भाषा में नापते है। इससे संगीत संविद् एक विचित्र ढक्कन लगी उभर आयी दिखायी देती है। ऐसी शिक्षा से संस्कारित छात्र संगीत के संस्कार लेकर बाहर निकलने के बजाय पाठ्यक्रम के ऐनक लगाये अथवा गडोलने पकडकर बाहर आये दिखायी देते हैं। पाठ्यक्रम के बाहर का संगीत उन्हें संगीत के रूप में प्रतीत ही नहीं होता, उसे पहचानना तो दूर की बात हो गयी। वे स्वर को पहचानते हैं, पर आकर्षक, अर्थपूर्ण ध्वनियों को नहीं पहचानते। उन्हें "लेबल" तो समझते है परन्तु मूल स्वरूप किसी के ध्यान में नहीं आता। ध्वनि को प्रतिध्वनि देना, उनसे संपर्क प्रस्थापित करना यह संगीतकार के द्वारा अवगत किया जानेवाला जादू उनसे बहुत परे होता है। क्योंकि संगीत के ढाँचे और ध्वनियों की आकृतियों में रहने वाले अंतर का उन्हें अंदाज़ा नहीं होता। कानों को खो बैठे आदमी संगीतकार नहीं बन सकते। हमारी संगीत शिक्षा में श्रवणविद्या का महत्त्व होना चाहिए, तभी संगीत संविद् सूक्ष्म, संपन्न एवं तरल होगा। आज के ध्वनि प्रदूषण के जमाने में श्रवण संवेदना कुंद हो जाने का खतरा केवल संभवनीय नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष में उतर आया है। श्रवण शक्ति का संवर्धन सप्रयत्न एवं सहेतुक होना चाहिए। संगीत संविद् तथा श्रवण क्रिया के सम्बन्ध को ध्यान में रखकर और संगीत शिक्षा का उद्देश्य केवल पाठ्यक्रम, राग संख्या, तान प्रकार इत्यादि तक मर्यादित न रखकर, हमें शिक्षण प्रक्रिया को सुधारने का विचार करना चाहिए।

सांगीतिक शास्त्रों का सांगीतिक आकलन

हमारे सारे सांगीतिक शिक्षाव्यवहार की निष्क्रियता एक मूलभूत दोष के कारण निर्माण होती है। 'संगीत के सभी सैद्धांतिक विषयों का असांगीतिक विवेचन' इस प्रकार इस दोष का वर्णन किया जा सकता है। संगीत का इतिहास, संगीत शास्त्र, संगीत का मानस शास्त्र, संगीत का पदार्थ विज्ञान इत्यादि सभी विषय हम बिना प्रत्यक्ष संगीत से सम्बन्ध जोड़े सिखाते हैं। संगीतेतिहास को,

सांगीतिक घटनाओं की एक सूची के रुप में नहीं बल्कि सांगीतिक कल्पनाओं (आयडिआ) के क्रमशः विकास के रूप में सामने रखा जाना चाहिए। यह सच है कि संगीत शास्त्र ही संगीत का व्याकरण है। अतः उसका हमेशा संगीत व्यवहार के पीछे रहना स्वाभाविक है। परंतु उसमें भी संगीत व्यवहार के रुढिमान्य संगीत रूप प्रतिबिंबित होने से संगीत की उत्क्रांति के जमाये गये स्वरूप का दर्शन हो जाता है। इस प्रकार उसका चित्र बनाये बिना संगीत संज्ञाओं की सूची आगे करने से हम कब बाज आयेंगे ? मनोविज्ञान और भौतिक शास्त्र की शिक्षा देते समय भी हमारे प्रत्यक्ष संगीत व्यवहार के साथ संबंध न जोडे जाने के कारण संदर्भहीन जानकारी के नाते इस शिक्षा को मन में ठुँसा दिया जाता है। इससे कई ज्ञानशाखाओं से कारोबार हासिल करने के कला के हक को संगीत खो बैठता है। प्रयोग विचार, शिक्षा, प्रसार और रक्षा आदि सभी पहलुओं को लेकर संगीत में जो एक लीक-सी बनी दिखायी देती है, उसका कारण है संगीत विषयक औपपत्तिक भागों की ओर देखने की हमारी कमजोर दृष्टि। यह चिल्लाहट ठीक नहीं कि संगीत शिक्षा में शास्त्रीय विषयों की भरमार हो गयी है। वास्तविक भूल यही है कि शास्त्रीय विषयों की शिक्षा गलत ढंग से दी जाती है औपपत्तिक विषयों के द्वारा ही कला शरीर का पोषण होता है। बिना उनके कला केवल कौशल बन जाती है।

अन्य प्रयोगसिद्ध कलाओं से दोस्ती

कुछ अस्थायी रूप से प्रस्तुत किया जाने वाला अंतिम मुद्दा यह कि संगीत-शिक्षा में नाट्य और नृत्य कलाओं का समावेश होना चाहिए। प्रयोगों के द्वारा ही इन कलाओं के आविष्कार सिद्ध होते हैं और संपर्क साधने के रास्ते भी समान होते है। इन बातों को ध्यान में लेते हुए उनका समावेश स्वागतार्ह सिद्ध हो। जिनमें अनेक कलाओं का मिश्रण हो ऐसी कलाओं की शिक्षा तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो सँकरे क्षेत्र में घूमती दिखाई देती है। लय का नृत्य से होने वाला अंगभूत नाता, भाषा के कलात्म उपयोग का नाट्य के साथ होने वाला अंगभूत संबंध केवल इन्हीं दो बातों को ध्यान में ले तो कल्पना कर सकते हैं कि संगीत शिक्षा की बुनियाद नाट्य-नृत्य की सहायता से कैसे मजबूत की जा सकती है। अपनी संवेदनशीलता के लचीलेपन को बढाने का लाभ भी इसमे से आसानी से हो सकता है यह भी समझ में आ सकता है।

आज संगीत शिक्षण पद्धति अनेक बंधनों में फसी हुई है। संगीत के सामाजिक स्थान के सबंध में जो संकुचित कल्पनाएँ हैं उनकी ओर इन बंधनों का रुख किया भी जा सकता है। परंतु इस प्रकार भाग निकलने की अपेक्षा बेहतर होगा कि संगीत शिक्षा की ओर फिर एक बार मुडकर देखा जाए।